© 2016 IJSRSET | Volume 2 | Issue 4 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology

संस्कृत वाङ्मय में आध्यात्मिक जीवन दर्शन

प्रो. रजनीकान्त शुक्ल
शिक्षासङ्काय, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम्(मानित विश्वविद्यालय)तिरुपति

भारतीय संस्कृति का आधार वेदों में मिलता है। सम्पूर्ण विश्व की ज्ञान-निधि के रूप में वेदों की महिमा अवर्णनीय है । सृष्टि के नैरन्तर्य की प्रक्रिया के अतिरिक्त जहाँ सांस्कृतिक मान्यताओं एवं धार्मिक चिन्तन को प्रबल प्रश्रय मिला है । वहीं भक्तिरस के अजय भाव का भी सांगोपांग विवेचन वेदों में हुआ है-

"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् ।। (ऋग्वेद 1.1.1)

उक्त मंत्र अन्वेद का स्तुति - मन्त्र है जिसमें ईश्वरभक्ति को समस्त कार्यों से पूर्व महत्त्व दिया गया है। आर्य - संस्कृति की इस भक्तिनिष्ठता के अवशेष वेदों की अनेक मन्त्रों- ऋचाओं में समाहित हैं। वेद की अलौकिकता ने ही आर्यों को अपनी ओर आकृष्ट किया तथा उनमें जीवन के विविध प्रतिमानों के अन्तर्गत आध्यात्मिक भावना को जाग्रत किया। यही आध्यात्मिक भावना आगे चलकर देवों के संदर्शन का अपूर्व माध्यम बनी। समय के प्रवाह के साथ-साथ इन्हीं देवों को मनुष्य के नैतिक जीवन का प्रमुख आधार माना गया। सर्वसाधारण मनुष्य की अपेक्षा इन देवों में दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का नितान्त अभाव देखा गया। देवों की सर्वव्यापकता, परोपकारोन्मुखी भावना एवं उनकी अपार शक्ति के द्वारा मनुष्य की कुत्सित भावनाओं का ह्रास हो गया। उनके द्वारा निर्मित नैतिक व्यवस्था (ऋत) का मार्ग दुष्कर्मों की निवृत्ति करने हेतु ही अपनाया गया था। इन्द्र, मित्र, अग्नि, वरुण आदि अनेकानेक देवों की मूलसत्ता का निदर्शन हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है ।

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरन्यो दिव्यः स सुपर्णो मरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वरानमाहुः ।।

(ऋग्वेद 1/108 : 1/105 : 15)

इस मंत्र में निहित देवों की अपूर्व कल्पना को ही परमब्रह्म का एवं परम तत्व की कल्पना का स्वरूप दिया गया। सत् तत्त्व की महत्ता को प्रशस्त किया गया जिसे विद्वानों एवं दर्शनशास्त्रियों ने अपने अपने भावों में अभिव्यक्ति प्रदान की। उस परमतत्त्व कासाक्षात्कार ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य था। परस्पर सर्व कल्याण की भावना मानव में व्याप्त थी, उसके नैतिक आदर्शों में समाहित थी। जीवन की नैत्विक दिनचर्या में पवित्रता, निष्ठा, कर्मठता और सन्तुलन का अद्भुत समन्वय था। जनसामान्य ऋत् और सत्य के बल पर जीवन जीने का मार्ग अपनाना चाहता था। ईश्वर को व्यापक रूप में मानने तथा प्राकृतिक शक्तियों और आध्यात्मिक मूल्यों में श्रद्धा व आस्था का भाव विद्यमान होने के कारण ईश्वर के मूर्तस्वरूप (प्रतीक) की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। परन्तु वेदों को विस्तृत रूप प्रदान करने के लिए देवपरक विषयों की

Received : 25 August 2016 | Accepted : 31 August 2016 | July-August 2016 [(2)4: 902-907]

व्याख्या विविध प्रकार से की जाने लगी। फलत: कर्मकाण्ड एवं विभिन्न सम्प्रदायों का उदय हुआ, जिनके चलते सम्प्रदायों की पृथक् विचारधाराएं भी निर्मित हुई। इसका परिणाम आचार्यों की परस्पर विरोधी धारणाओं में अनुभव किया गया। तथापि सुधी पण्डित शास्त्रार्थ के द्वारा इन मतभेदों–मतान्तरों का समाधान स्वत: ही कर लिया करते थे।

शनै: शनै: कालान्तर में पुराणोपनिषद् परम्पराओं का आविर्भाव हुआ। यज्ञादि कर्मकाण्डों–अनुष्ठानों से सम्बद्ध अभिचारों का महत्त्व कम हो गया। इसके स्थान पर यथार्थज्ञान एवं आध्यात्मिक भक्ति भावना के उत्कर्ष को जीवन का प्रधान अंग माना गया। यह भी स्वीकार किया गया कि' ज्ञान के अभाव में परलोक की प्राप्ति न यज्ञ से सम्भव है और न तप से अपितु यज्ञ में निहित धार्मिक भावना से ही वह सम्भव है।' (शतपथब्राह्मण 10.5.4.15), फलत: आत्मोन्नति और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया गया। यज्ञों के विधि–विधानों और उनमें व्याप्त हिंसात्मक प्रवृत्तियों से लोग विमुख होने लगे। अत: धर्म का अवलम्बन प्राप्त किया गया। प्रारम्भ में धर्म की तीन अवस्थाएँ स्वीकार की गई जो आचार तत्त्व, कर्म तत्त्व और अध्यात्म तत्त्व से परिपूर्ण मानी गई। इन प्रमुख अवस्थाओं–ने नवीन भावनाओं को दिशा प्रदान की तथा सदाचरण, सत्कर्म–पालन, सहानुभूति, क्रियाशीलता, कर्मानुसार पुण्य एवं नैतिक जीवन,धृतव्रत आदि का समन्वय अनुभव किया गया। इन मूल्यों ने ही जनसामान्य के अन्त में भक्ति धर्म की अवधारणा को पुष्ट किया। देवों के प्रति भक्ति द्वारा निष्ठा की भावमय अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गई –

"अयं वै पवित्रो योऽयं पवते

सोऽयं पुरुषेन्ता प्रविष्ट प्राङ् च प्रत्य च ।।" (श,ब्रा.32)

इस मन्त्र के अन्तर्गत भक्त का देवाधिदेव के सन्निकट पहुँचने का पवित्र मार्ग दर्शाया गया है।

भक्ति सर्वदा अपने प्रिय देवता के प्रति श्रद्धावनत होकर पूर्णरूपेण प्रणत भावसे उसमें लीन हो जाने का मांगलिक प्रयत्न है। शतपथ ब्राह्मण में संकेतित है –

"वृत्रो ह वा इदं सर्ववृत्वा शिष्ये ।" (3.4)

"अहं व: प्रियोभूयासम् इत्येव एतदाह ।" (1.6.1.1)

वस्तुत: देवों की प्राप्ति तथा उनके प्रति भक्तिनिष्ठा को आर्य संस्कृति ने बहुतमहत्त्व दिया है।

मानव जीवन की सफलता को आध्यात्मिक तत्त्वों में समर्पित कर देना ही भारतीय दार्शनिक चिंतन धारा का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की सिद्धि हेतु पौराणिक हिन्दू धर्म में अंगीकृत पुरुषार्थो द्वारा सम्भव है। महापुरुषों में पुरुषार्थों के प्रति वैशिष्ट्य प्रदान किया गया है –

"धर्मार्थकाममोक्षाख्यां पुरुषार्थचतुष्टयम्" (मार्कण्डेय पुराण, अ.या. श्लो. 191/2)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। मनुस्मृति में इन चारों पुरुषार्थो के नित्य जीवन में पालन पर बल दिया गया है –

"एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।

अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रित: । ।" (मनु 7. श्लो. 100)

इन चारों पुरुषार्थो में मोक्ष का सम्बन्ध आध्यात्मिक भावना से है। धर्म उसका प्रमुख साधन है, अर्थ और काम जीवन को गति प्रदान करने के साधन हैं। उन्हें धर्म के साधनों की संज्ञा भी दी जा सकती हैं। मोक्ष को छोड़कर तीनो पुरुषार्थों को त्रिवर्ग की एकरूपता प्रदान की गई है –

"धर्मश्चार्थश्चकामश्च त्रिवर्ग:" (मत्स्यपुराण, अध्याय - 211/3)

चारों पुरुषार्थों को चतुवर्ग भी कहा गया है। धर्म इन पुरुषार्थों का मूल स्रोत है–

"धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते ।

धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्म समाश्रयेत् ।। " (कूर्मपुराण, पू.भा. 2/52)

प्राय: धर्म का लक्ष्य ही मोक्ष प्राप्ति है । अत: धर्म के अतिरिक्त यदि मनुष्य को अर्थ की अभिलाषा हो तो वह धर्म के अधीन कर्म करते हुए अर्थोपार्जन भी कर सकता है। यहाँयह अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए कि अर्थ का लक्ष्य काम वासना की सिद्धि न हो अपितु सांसारिक विषय भोग से विरति होकर उसे अच्छे कार्यों के लिए प्रयोग में लाना चाहिए। भागवत पुराण में जीवन के चारों लक्ष्यों के विषय में यह कहा गया है कि धर्म का फल है मोक्ष, उसकी सार्थकता अर्थ प्राप्ति में नहीं है, अर्थ केवल धर्म के लिए है, भोग विलास उसकी परिणति नहीं है। भोग विलास का परिणाम इन्द्रियों की तृप्ति मात्र है, किन्तु उसका प्रयोजन जीवन का निर्वाह करना है –"

"धर्मस्यह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थोपकल्पते,

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामोलाभाय हि स्मर ।

कामस्य नेन्द्रिय प्रीतिर्लाभो जीवेत् यावता,

जीवस्य तत्त्व - जिज्ञासा नार्थो यश्चेहकर्मभि: ।।" (स्कन्ध - 1.9.10)

पुराणों में धर्म की व्यापकता सर्वत्र दिखाई देती है। 'धर्म' शब्द की उत्पत्ति एवं तद्विषयक विभिन्न अर्थों एवं विचारों को भिन्न भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कुछ मतों का उल्लेख किया जाता है–

"धारणार्थे महान् ह्येष शब्द: प्रकीर्तित: ।" (लिंग पुराण, प्र.भां अ. 10/12) /

"धर्मेण धार्यते लोक: ।" (भविष्य पुराण म.प., अ. 1.26)

"धारणाधृतिरित्यर्थाद्धस्तो: धर्मशब्द: प्रकीर्तित: ।" (वायु पुराण, प्रक्रियापद, अ. 51.26)

"धरति लोकान् घ्रियते पुण्यात्मभिरिति वा" (शब्दकल्पद्रुम भाग - 2 पृ. 783)

"सत्येन पाल्यते धर्मो धर्मो रक्षति रक्षित:" (वराहपुराण, अ. 193. 49)

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।" (मनुस्मृति, अ.2. श्लोक -6)

"धारणार्थोधृतिश्चैव धातु: शब्दे प्रकीर्तित:।

अधारणामर्हत्त्वे च अधर्म: इति चोच्यते।।" (ब्रह्माण्ड पुराण, पू. भाग. अ. 32.29)

"यच्च धर्मं सदा रक्षेत धर्मस्तं परिरक्षति।।" (ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्र.ख. अ. 9. श्लोक: 92)

अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसी की रक्षा करता है।' इत्यादि सुप्रसिद्ध विचारों का प्रतिपादन धर्मशास्त्रों में किया गया है। धर्मशास्त्रों में वर्णित धर्म मूलत: वेदानुयायी होकर धर्मशास्त्रीय परम्परा का निर्वहन करता है। भारतीय संस्कृति की धार्मिक परम्परा में वस्तुत: मानव के श्रेष्ठ आत्मिक गुणों तथा सामाजिक दायित्वों की प्रधानता है। ये समस्त गुण मानवता के औदात्य और उसके मूल्यों के संपोषक हैं। चारों पुरुषार्थों केसदृश ही चारों वर्गों द्वारा करणीय कर्मों को तत् तत् वर्ण वाले व्यक्तियों के लिए अनुपालनीय बताया गया है –

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागश:।

तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।। (गीता - 4 /13)

ये करणीय कर्म धर्म का स्वरूप ही हैं जिन्हें ईश्वर ने चारों वर्णों के निमित्त अनुपालनीय बनाया है। मानवीय प्रवृत्तियों के अनुकूल होने के कारण धर्मशास्त्रों में धर्म का रूप उदार और समन्वयपूर्ण बताया गया है। मनु और याज्ञवल्क्य जैसे महान आचार्यों ने धर्म के दस लक्षणों को अंगीकार किया है –

धृति क्षमा दमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। (मनु अध्याय - 6 / 66)

उक्त दस धर्मलक्षणों के अतिरिक्त वामन पुराण में चौदह प्रकार के धर्म लक्षणों कानिर्देश किया गया है जो अत्यन्त ही सुखप्रद एवं मोक्षदायी हैं –

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिना ।।

शुभा सत्या च मधुरा वाङ्नित्यं सत्क्रियारतिः ।

सदाचारनिषेवित्वं परलोक प्रदायकः ।। (वा. पु. अ. 2, श्लोक 3)

ब्रह्म पुराण में भगवान् व्यास स्वयं अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहते हैं कि धर्म ही माता पिता, भाई बन्धु, सखा, पालक एवं स्वामी हैं –

धर्मो माता धर्मो नाथः सुहृत्तथा ।

धर्मः स्वामी सखा गोप्ता तथा धाता च पोषकः ।।(ब्रह्म पुराण, अ. 106,74)

इसी तरह नैतिक जीवन के समस्त कर्तव्य भी धर्म की परिधि में परिगणित होते है, यथा शरणागत धर्म, अतिथि धर्म, मातृधर्म, पितृ धर्म, पति धर्म, पुत्र धर्म, स्त्री धर्म, छात्र धर्म, गुरुधर्म इत्यादि प्रमुख धर्म माने जाते हैं क्योंकि ये भी मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से जुड़े रहते हैं। अतः धर्म शब्द अपने आप में अनेक गुढ़ अर्थ छिपाए हुए हैं जो मानव जीवन के विविध रूपों में समन्वय की स्थापना करते हैं। उक्त क्रम में राज धर्म एवं गृहस्थ धर्म की चर्चा का भी प्रसंग उपस्थित होता है। गरुड़ पुराण में राज धर्म काउपदेश देते हुए श्रीसूत जी कहते है –

राज्यं पालयते नित्यं, सत्य धर्मपरायणः ।

निर्जित्य पर सैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्।।

(ग. पु. पू. खण्ड, अ. 111-24)

अर्थात् राजा को सत्य – धर्मपरायणता से नित्य राज्य का पालन करना चाहिए और अपने शत्रु की सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हुए धरती (प्रजा) का पालन पोषण करना चाहिए। राज धर्म के समान ही गृहस्थ धर्म का भी बहुत बड़ा महत्व है। इस विषय में – भविष्य पुराण कहता है – कलियुग में वानप्रस्थ आश्रम तो है ही नहीं, ब्रह्मचर्याश्रम कुछ सीमा तक है, किन्तु गृहस्थ धर्म तो निरन्तर एक समान है और सर्वश्रेष्ठ हैं ।।

वानप्रस्थः कलौनास्ति, ब्रह्मचर्यं क्वचित्क्वचित्।

गार्हस्थं कर्म सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।। (भ.पु. प्रतिसर्ग पर्व, अ. 307)

हिन्दू संस्कृति में पतिव्रत धर्म की चर्चा भी की गई है। स्त्री को पूज्या माना गया है। वह गौरवमयी है। वह कहीं वात्सल्यप्रवणा माँ है तो कहीं स्नेहमयी भगिनी है या फिर पति के सुख दु:ख में संग रहने वाली समर्पिता नारी है। पतिव्रता नारी के धर्म का बखान करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण कहता है –

पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तप: ।

पति सेवा परो धर्म: पति सेवा सुरार्चनम्।

पति सेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम् ।

सर्वदेवमय: स्वामी सर्वदेवमय: शुचि: ।। (ब्र. वै. कृ.ज.ख. 57,1,19)

धर्म को उन्नत बनाने हेतु सत्कर्म करने चाहिए, क्योंकि अपने मानवतावादी दृष्टिकोण की अनुपालन में व्यक्ति यदि सत्कर्म करता है तो निश्चय ही वह सुख पूर्वक अपने भविष्य का भोग करता है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं– इस जन्म के पूर्व ऐसे कारण हैं जिनके फलस्वरूप मनुष्य इस जन्म में सुखी या दु:खी हुआ करता है और ये कारण है – इसके पूर्वानुष्ठितकर्म । कर्मों के अनुसार ही आत्मा अपने नए रूपों को धारण करता है। उसमें कुछ ऐसी विशेष प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं जिनके कारण वह एक विशेष प्रवृत्तिवाली जीवात्मा उसी के शरीर में जन्म ग्रहण करती है ।

मानव जीवन में परोपकार की भावना भी धर्म का संरक्षण व पोषण करती है। सर्वदा परहित चिन्तन करना एवं स्वार्थपरता से विमुख रहना अपने आप में श्रेष्ठ धर्म का रूप है। यही बात रामचरित के माध्यम से कवि तुलसी कहते हैं– (उत्तरकाण्ड –[२१]–)

दूसरे मनुष्यों के दु:ख दर्द बाँट लेना ही सर्वोत्तम धर्म है। कवि तुलसी का यही आशय है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक विलियम जोन्स का कथन है कि "धर्म का अर्थ व्यक्ति का वह एकांतिक भाव क्रिया एवं अनुभव है जो व्यक्ति और ईश्वर के सम्बन्ध के ज्ञान से विकसित होते हैं। महात्मा कबीर स्वयं "एकै साधे सब सधै" कहकर धर्म की मूल व्यंजना की ओर संकेत करते हैं।

इस प्रकार समग्र विवेचनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति और समाज के धार्मिक विचार जो वर्णाश्रमों पुरुषार्थ वैशिष्ट्य षोडश संस्कारों तथा सामाजिक कृत्यों आदि में वर्णित हैं– सभी का क्षेत्र मौलिक रूप से मानवतावादी भावभूमि से परिपूर्ण हैं जिनमें "सर्वे भवन्तु सुखिन:" संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्", "समानी व आकूति: समाना हृदयानिव:""परित्राणाय साधूनां" एवं "सर्वत हिते रता" की विश्वव्यापिनी कल्याणकारिणी भावना विद्यमान है। ऐसी शुचिपूर्णविचारधारा में 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की मधु कामनाएँ भी सम्मिश्रित हैं, एवं "विश्वं भवत्येकनीडं" आप्त वाक्यों के द्वारा विश्व संस्कृति के समन्वयवादी एवं आध्यात्मिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय सांस्कृतिक धर्म का गौरवपूर्ण अस्तित्व चिरस्थायी है ।

सन्दर्भ सूची

[१]. शिक्षा एवं संस्कृति नये सन्दर्भ – डॉ. भास्कर मिश्र

[२]. प्राचीन एवं अर्वाचीन वैदिक साहित्य में भक्ति तत्त्व – दिनेशचन्द्र धर्ममार्तण्ड

[३]. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. बलदेव उपाध्याय

[२२]. महापुराणों में पुरुषार्थ चतुष्टय – डॉ. श्री विलास बुडाकोटी

[२७]. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग [३] – डॉ. पी दी. काणे

[३क]. धर्म और उसका अभिप्राय – डॉ. शिवनारायण लाल